International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
www.socialsciencejournal.in
Volume 3; Issue 3; March 2017; Page No. 102-105

भारत में संसदीय लोकतन्त्र

डॉ0 कमलेश कुमार सिंह

एसोशिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष – राजनीति विज्ञान, के0ए0 (पी0जी0) कालेज, कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

भारत विश्व का सबसे बड़ा संसदीय लोकतन्त्र है। 1952 में जब यहाँ वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रथम आम चुनाव हुआ था, उस समय मतदाताओं की संख्या 17 करोड़ 30 लाख के लगभग थी। यह संख्या वर्तमान में बढ़कर लगभग 100 करोड़ हो गई। भारत में संसदीय लोकतन्त्र की जड़े मजबूत है एवं समय–समय पर विश्व में इस लोकतन्त्र की सराहना हुई है। संसदीय लोकतन्त्र शासन एवं जीवन की नैतिक धारणा है। इसमें सभी मनुष्यों को समान अधिकार होते है। इसमें सबों को समता मिलती है। यह शासन संचालन की एक पद्धति है। संसदीय लोकतन्त्र केवल अधिकारों पर ही जीवित नहीं रहता बल्कि इसकी जड़ें कर्तव्य पर भी आश्रित रहती हैं। स्वतन्त्रता, समानता एवं बन्धुत्व लोकतन्त्र के आदर्श होते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत ने ऐसे ही लोकतन्त्र को अपनाया, जिसमें मर्यादा, संयम एवं अनुशासन की व्यवस्था हैं। संसदीय लोकतन्त्र में त्रुटियाँ हो सकती हैं, लेकिन शासन का यह सर्वोत्तम रूप अभी भी है एवं आगे भी रहेगा, क्योंकि इसमें विकास की प्रचुर क्षमता रहती है। पं0 जवाहरलाल नेहरू ने 14 अगस्त, 1947 को अर्द्धरात्रि के समय कहा था कि ''बहुत वर्ष हुए, हमने भाग्य के एक सौदा किया था और जब अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का समय आया है।'' उन्होने जब ये शब्द कहे थे उस समय उनके सामने यह स्पष्ट था कि स्वतन्त्र भारत कौन–सा रास्ता चुनेगा। उन्होंने जनवरी, 1938 में ही लिखा था कि ''राष्ट्रीय कांग्रेस का उद्वेश्य स्वतन्त्र तथा लोकतान्त्रिक राज्य कि स्थापना करना है।'' स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत का एक उद्वेश्य तो 15 अगस्त 1947 को पूरा हो गया था, लेकिन दूसरा उद्वेश्य भारत को लोकतन्त्र बनाने का बाकी था। इस उद्वेश्य को हमारे राष्ट्र निर्माताओं ने सविंधान सभा में, एक प्रस्ताव पेश करके पूरा किया। उन्होने एक संकल्प की घोषणा की कि, ''भारत को एक स्वतन्त्र, प्रमुख सम्पन्न गणराज्य उद्वघोषित किया जाए, जिसे समस्त शक्ति और अधिकार जनता से प्राप्त होंग।'' जब संविधान बना तो भारत एक 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' घोषित किया गया।

भारत में संसदीय लोकतन्त्र की सबलताएँ

भारत में संसदीय लोकतन्त्र सबल है। भारत के लोग संसदीय लोकतन्त्र के विरोधी नहीं है। देश मे संसदीय लोकतन्त्र की जड़ें जमीं हुई है। कुछ लोगों का कथन है कि भारत में संसदीय लोकतन्त्र कमजोर है। लेकिन यह विचार उचित प्रतीत नहीं होता है। इस सम्बन्ध मे मोरार जी देसाई ने लिखा है कि, ''आज इस देश के सभी क्षेत्रों मे कुछ–ना–कुछ खामियाँ दिखाई पड़ती है पर सिर्फ इसका कारण यह कहना ठीक नहीं है कि संसदीय जीवन के सूत्र टूटने लगे हैं।''[1] यहाँ संसदीय लोकतन्त्र की बुनियादी धारणाओं का बराबर पालन हुआ हुआ है। समाज के विविध वर्गो को राजनीतिक व्यवस्था में स्थान मिला है। अब तक जो गाँव राजनितिक व्यवस्था से दूर थे, वे इसक पास आ रहे हैं। डॉ सुभाष कश्यप ने लिखा है कि, ''भारतीय मतदाता अपने देश की राजनीतिक संरचना और इतिहास के प्रवाह को बदल सकता है। यही तथ्य लोकतन्त्र का सार और आधार है।''[2] 1977, 1980, 1984, 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 एवं 2009 के चुनाव भारत की जनता के लोकतान्त्रिक जीवन में गहरी आस्था, राजनीतिक परिपक्वता एवं जागरूकता के परिचायक है तथा तथ्य भारत के संसदीय लोकतन्त्र का सबसे सबल पक्ष है। भारत की संसदीय लोकतन्त्र की प्रमुख सबलताएँ निम्नलिखित कही जा सकती हैं:–

पहली सबलता भारत का संसद कहा जा सकता है। भारत की संसद संसदीय लोकतन्त्र का स्पष्ट प्रतीक है। राष्ट्रीय महत्व के अनेक प्रश्नों एवं समस्याओं के समाधान में भारतीय संसद की निर्णायक भूमिका रही है। यहाँ के संसदीय दबाव ने टी.टी. कृष्णमाचारी, के.डी. मालवीय, वी.के. कृष्णमेनन, गुलजारी लाल नन्दा जैसे मन्त्रियों को त्याग–पत्र देने के लिए बाध्य किया है।

दूसरी सबलता लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पर बल कहा जा सकता है। भारत में पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा दिया गया है एवं आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया गया है। स्थानीय समस्याओं के समाधान में ग्राम पंचायतें की भूमिका दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों में पंचायतो की महत्वपूर्ण भागीदारी है।

तीसरी सबलता आर्थिक नियोजन कहा जा सकता है। भारत में आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना के लिए नियोजक आर्थिक विकास का सुत्रपात हुआ है। यद्यपि आर्थिक नियोजन के द्वारा सामयिक एवं आर्थिक क्रान्ति के वांछित लक्ष्य प्राप्त नही हो पाए हैं, लेकिन इससे गरीबी एवं आर्थिक विषमता पर प्रभावी अंकुश लगा है।

चौथी सबलता पंथ:– निरपेक्षता कहा जा सकता है। यह भारतीय लोकतन्त्र का बुनियादी सिद्धान्त है। भारतीय समाज के सभी अल्पसंख्को को बिना धार्मिक भेदभाव के लोकतान्त्रिक पद्धति में भाग लेने का अवसर मिलता है। यहाँ जन्म, जाति, लिंग या धर्म आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता है।

भारत में संसदीय लोकतन्त्र की दुर्बलताएँ

भारत मे संविधान द्वारा संसदीय लोकतन्त्र की स्थापना की गई। सच्चा लोकतन्त्र वास्तव में संसदीय लोकतन्त्र ही होता है, जिसमें बिना हिंसक क्रान्ति के सत्ता परिवर्तन किया जाता है, लेकिन ऐसा लगता है कि कुछ वर्षा से भारत में संसदीय लोकतन्त्र हिल रहा है। विगत वर्षो मे यहाँ अनेक स्थानों पर कानून एवं व्यवस्था की स्थिति बेकाबू हुई है। हिंसा, उपद्रव, लूटमार, डकैती आज सामान्य बात हो गई है। चारों ओर अविश्वास, अनिश्चितता एवं निराशा व्याप्त होने लगी है। डॉ0 योगेश अटल ने लिखा है कि, ''स्वतन्त्र भारत का स्वाधीन नागरिक, सामान्य जन आज कठिनाई के जिस दौर से गुजर रहा है, उसमें उनका मानस 'चिर मुक्ति' की ही कामना कर सकता है।''[3] रघुकुल तिलक के अनुसार, ''भारत की जनता अपने स्वभाव और मनोवृत्ति के कारण लोकतन्त्र को सफल

बनाने की क्षमता नहीं रखती। यहाँ की धार्मिक और सांस्कृतिक परम्पराएँ लोगों को भाग्यवादी और सहनशील होना सिखाती हैं और इसलिए वे निरंकुश शासन के अत्याचार को सहन कर लेते हैं और सत्ताधारी का विरोध या आलोचना करना पसन्द नहीं करते। इसके अतिरिक्त यहाँ का समाज जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर इतने छोटे–छोटे टुकड़ो में बँटा हुआ है कि कोई भी निरंकुश तन्त्र इस प्रकार से लाभ उठाकर सहज ही अपना अधिपत्य जमा सकता है। यहाँ की साधारण जनता अधिकतर निरक्षर है और उसमें पर्याप्त चरत्रि पालन और मूल अधिकारों की रक्षा के लिए मर मिटने की भावना नहीं है। ऐसा समाज उदारवादी प्रतिनिधिक लोकतन्त्र के लिए, जो समता और सामाजिक न्याय की नींव पर खड़ा हो, अनुकूल परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत नहीं करता।''[4] भारतीय लोकतन्त्र के प्रमुख दुर्बल तत्व निम्नलिखित कहे जा सकते हैं:–

पहला दुर्बल तत्व सशक्त विरोधी दल का अभाव कहा जा सकता है। यहा पर लम्बे समय तक सशक्त विरोधी दल का अभाव रहा है। स्वस्थ्य संसदीय लोकतन्त्र के लिए सशक्त विरोधी दल का होना आवश्यक होता है। जब बहुमत दल शासन मे होता है तो उसके शासन की बुराईयों को सामने लाकर उनमें सुधार करवाने के लिए एक सशक्त विरोधी दल का होना नितान्त आवश्यक है।

दूसरा दुर्बल तत्व विरोधी मे उत्तरदायित्व का अभाव कहा जा सकता है। संसदीय लोकतन्त्र में विरोधी दल द्वारा सत्ता पक्ष की आलोचना करना उसका उत्तरदयित्व होता है। लेकिन आलोचना एवं विरोध रचनात्मक एवं सकारात्मक होना चाहिए। भारत के विरोधी पक्ष में हमेशा से इस बात की नितान्त कमी रही है, लेकिन अब स्थिति बदल रही है। इसका प्रमाण यह है कि 13 दिसम्बर, 2001 को भारत की संसद पर हुए आतंकवादी आक्रमण के बाद भारत की संसद ने राष्ट्रहित में अपना उत्तरदायित्व समझते हुए सरकार को इस सम्बन्ध में पूर्ण समर्थन देने का वचन दिया, जिसकी सत्ता पक्ष ने भी मुक्त कण्ठ से प्रसंशा की।

तीसरा दुर्बल तत्व महँगाई एवं भ्रष्टाचार की समस्याएँ कहा जा सकता है। महँगाई ने देश के मध्यम वर्ग की कमर तोडी है एवं इसकी शक्ति को जर्जर एंव प्रतिभा को कुण्ठित किया है। एक ओर गिने–चुने व्यक्ति अथाह सम्पत्ति से ऐशो–आराम का जीवन व्यतीत करते हैं तो दूसरी ओर महँगाई के कारण लाखों व्यक्ति दोनो समय भरपेट भोजन के लिए तरसते रहते रहते है। देश भ्रष्टाचार की ओर तेजी से बढ़ रहा है। 'शेयर घोटाला', 'तहलका डॉट काम में उजागर भ्रष्टाचार', 'ताबूत खरीद घोटाला' एंव अन्य घोटालों ने देश के आम नागरिक को लोकतन्त्र के भविष्य के बारे में सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। भ्रष्टाचार हमारे देश के नेताओं और धन्ना सेठों के जीवन का एक प्रमुख अंग बनता जा रहा है।

चौथा दुर्बल तत्व साम्प्रदायिकता, भाषावाद एंव प्रादेशिकता का बोलबाला कहा जा सकता है। पिछले 70 वर्षो से भारत के लोकतन्त्र के लिए साम्प्रदायिकता, भाषावाद एंव प्रादेशिकता की समस्याएँ सिरदर्द बनी हुई हैं। इन समस्याओं के कारण देश में अराजकतावादी एंव विघटनकारी तत्वों को प्रोत्साहन मिलता है तथा देश में समय–समय पर हिंसात्मक वातावरण बन जाता है। इन समस्याओं ने इस नवोदित लोकतन्त्र को समय–समय पर संकट में डाला है।

पाँचवाँ दुर्बल तत्व अस्थिरता एवं दबाव की राजनीति कहा जा सकता है। राजनीतिक अस्थिरता एवं अनिर्णय की प्रवृत्ति से हमारी राजव्यवस्था में शक्ति शून्यता की स्थिति पैदा होने लगी है। 1967 के चुनावों के बाद से राज्यों में मिली–जुली संविद् सरकारों का दौर चला है। इससे अराजकता की स्थिति पैदा होने लगी है। केन्द्र में भी कुछ दिनों अस्थिरता का दौर कायम रहा। 11वीं, 12वीं एवं 13 वीं लोकसभा के चुनाव समय से पहले हुए। 13वीं एवं 14वीं लोकसभा के चुनावों के बाद अनेक दलों की मिली–जुली सरकारें बनी। इससे अस्थिरता एवं दबावों का दौर चल पडा। 1989 से 1999 के दस वर्ष भारत में राजनीतिक अस्थिरता का दौर कहा जा सकता है इन दस वर्षो में पाँच बार लोकसभा के चुनाव हुए, चार बार केन्द्र में सरकारें बदली एवं सात नेताओं ने प्रधानमन्त्री के रूप मे किया। वर्तमान में भी राजनीतिक अस्थिरता का दौर कायम है। हालाँकि इसमें कुछ हद तक स्थिरता आई है।

छठा दुर्बल तत्व हिंसा एवं आन्दोलन की घृणित राजनीति कहा जा सकता है। विगत कुछ वर्षो मे देश में हिंसा एवं घृणित जन आन्दोलनों की राजनीति ने देश में अव्यवस्था एवं अस्थिरता पैदा की है। निर्वाचित विधानसभाओं को भंग कर पाने के लिए केन्द्र सरकार पर समय–समय पर दबाव डाला जाता रहा है। बिहार में सरकार को हटाए जाने के लिए बिहार बन्द का आह्वान किया गया। जनता को शासन व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह करेन के लिए तैयार किया गया।

सातवाँ दुर्बल तत्व राजनीतिक संघर्ष की उभरती हुई प्रवृत्ति कहा जा सकता है। भारत में केन्द्र एवं राज्यों में अलग–अलग राजनीतिक दलों की सरकारें होने के कारण इनमें आपस में तनाव, परस्पर विरोध एवं विद्रोह की जटिल स्थिति बनी हैं, जिसके कारण प्रान्तीयता एवं संकुचित पृथक्तावादी शक्तियों ने सिर उठाया है।

आठवाँ दुर्बल तत्व संसदीय वाद–विवाद में गुणात्मक ह्रास कहा जा सकता है। संसद एवं राज्यों के विधानमण्डलों की कार्य–प्रणाली का पतन हुआ है।

व्यक्तिगत दोषारोपण ने प्रजातन्त्र का घोर अवमूल्यन किया है। पंजाब, बंगाल एवं तमिलनाडु के विधानसभा अध्यक्षों ने अध्यक्षीय गरिमा को ठेस पहुँचाई है। इससे संसदीय लोकतंत्र की अवमानना हुई। इस सम्बन्ध में डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने लिखा है, ''स्वतन्त्रता के पश्चात् विधायको की गुणवत्ता में ह्रास होता गया है जो चिन्ता का विषय है। दल के जो उम्मीदवार चुने जाते हैं वे योग्यता के आधार पर नहीं चुने जाते है, अधिकतर अत्यन्त साधारण किस्म के उम्मीदवार का चुनाव होता है। विधायकों में प्रतिभा, वाक् विदग्धता और लगन का अभाव है जो हमारे सार्वजनिक प्रशासनों के गिरते हुए स्तरों का एक प्रधान कारण बना हुआ है।''[5]

नौवी दुर्बल तत्व संसद का घटता दर्जा कहा जा सकता है। भारत के संविधान का उद्देश्य है कि यहाँ पर व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका की सत्ता अलग रहें, किन्तु उनके काम–काज का एक अजीब तथा अवांछनीय मेल हो गया। सिद्धान्त की दृष्टि से जब तक संसद चाहे मन्त्रिमण्डल सत्ता में रह सकता है, लेकिन व्यवहार में मन्त्रिमण्डल ने संसद के काम एवं उसके अधिकार अधिक से अधिक हथिया लिए। डॉ0 लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने इस सम्बन्ध में लिखा हैं,'' आज संसद केवल सीमित सतर्कता का साधन रही है। नीति के निर्माण एवं संशोधन में संसद सशक्त मार्गदर्शन प्रदान करने मे अपने को असमर्थ पाती है।''[6] इस सम्बन्ध में प्रो0 जे0डी0 सेठी ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, ''संसद की सत्ता की हानि का मूल कारण है वर्तमान पार्टी पद्धति। पार्टी अनुशासन एवं निष्ठा के कारण सरकारें अधिकाधिक आरक्षित होती गई है।''[7]

दसबाँ दुर्बल तत्व बहुदलीय प्रणाली कहा जा सकता है। भारत मे बहुदलीय प्रणाली है। यह बहुदलीय प्रणाली लोकतन्त्र के विकास एवं संसदीय शासन के सफल संचालन में बाधक बन रही है। राजनीतिक दलों मे सहयोग एवं तालमेल का अभाव है। राजनीतिक दलों मे फूट एवं गुटबाजी है। अक्सर असन्तुष्ट गुट के लोग अपना अलग दल बना लेते हैं। जब तक भारत मे दो–तीन प्रमुख दल संगठित नही हो पाते तब तक संसदीय संस्थाएँ भली–भाँति जीवित नहीं रह सकतीं और यदि वे रह भी गई तो कमोबेश प्रभावहीन बनी रहेंगी।[8]

ग्याहरवाँ दुर्बल तत्व नौकरशाही की शक्ति एंव प्रभाव में वृद्धि कहा जा सकता हैं। देश के स्वाधीन होने के बाद से नौकरशाही के प्रभाव एवं उसकी शक्ति में असाधारण वृद्धि हुई। मन्त्रिमण्डल सचिवालय एवं प्रधानमन्त्री कार्यालय के बढ़ते प्रभाव की अब तो आलोचना भी होने लगी है। ग्रामीण जनता आज भी पटवारी, थानेदार एवं तहसीलदार की शक्ति के आगे नतमस्मक है। नौकरशाही में जनता के स्वामी होने का झूठा दम्भ एवं अहम् पैदा हो गया है।

बरहवाँ दुर्बल तत्व दल–बदल की दोषपूर्ण प्रवत्ति कहा जा सकता है। भारत में दल–बदल की दोषपूर्ण प्रवृत्ति के कारण समस्त संसदीय वातावरण दूषित हो गया है। यहाँ पर मूल्यों की राजनीति के स्थान पर सत्ता लोलुपता की राजनीति का सूत्रपात हो गया है। दल–बदल के कारण राज्यों में सरकारों के चलने में संकट आया है। एवं लोकप्रिय सरकारों के गठन में बाधा आई है। इस प्रवृत्ति के कारण नौकरशाही का प्रभाव बढ़ा है एवं जनता पर चुनावों के खर्चे का भारत पड़ा है। दल–बदल कानून भी कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़ सका है। दल–बदल के कारण जहाँ सरकारों में अराजक तत्वों का प्रभाव बढ़ा है, वहीं दूसरी ओर आर्थिक विकास की गति भी अवरूद्ध हुई है।

तेरहवाँ दुर्बल तत्व दोषपूर्ण प्रणाली कहा जा सकता है। भारत की वर्तमान निर्वाचन प्रणाली दोषपूर्ण है। यहाँ अल्पमतों को प्राप्त करने वाला व्यक्ति निर्वाचित हो जाता है एवं बहुमत कई व्यक्तियों में बँट जाने के कारण उनका बहुमत सिद्ध हो जाता है। पैसों, अपराधी तत्वों, गुण्डागर्दी, बूथ कैपचरिंग, साधन सम्पन्नता आदि के कारण चुनावों में योग्य व्यक्ति नहीं आ पाते। भारत में चुनाव व्यवसाय बन गए हैं, जिसमे मुनाफा कमाने के लिए धन का विपुल मात्रा में निवेश किया जाता है।

चौदहवाँ दुर्बल तत्व नैतिक मूल्यों के पतन कहा जा सकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से लगातार नैतिक मूल्यों का पतन होता चला जा रहा है। चोर बाजारी, मिलाबट, जमाखोरी, बाला बाजारी तथा भ्रष्टचार रूपी बुराइयाँ दिन दुनी और रात चौगुनी सुरसा की भाँति बढ़ रही है। भ्रष्टाचार की अनेक छुरियाँ स्थापित हो गई है। तस्कर, नौकरशाह, राजनेता, मन्त्री विधायक, उद्योगपति आदि सभी भ्रष्टाचार मानने लगे हैं। 'तहलका डॉट काम' ने तो फिर रही–सही सारी स्थिति ही उजागर करके रख दी हैं। इस सम्बन्ध मे तवलीन सिंह ने लिखा है कि,'' प्रधानमन्त्री की लोकसभा सीट के तहत आने वाले विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र से किस्मत आजमा रहे एक उम्मीदवार की एक मात्र ख्याति यह है कि वह अब तक 242 दफा जेल जा चुके हैं।'' यह हमारे लोकतन्त्र की एक दर्दनाक दास्तान है।[9]

पन्द्रहवाँ दुर्बल तत्व केन्द्र–राज्य सम्बन्धों मे तनाव की स्थिति कहा जा सकता है। वर्तमान शासन प्रणाली में केन्द्र एंव राज्यों के बीच अविश्वास बढ़ा है। अनुच्छेद 356 की राष्ट्रपति शासन की व्यवस्था एवं नीति आयोग की सिफारिशें भी केन्द्र राज्यों में तनाव का कारण बनी हैं।

सोलहवाँ दुर्बल तत्व अनुशासन हीनता की प्रवृत्ति कहा जा सकता है। भारत के लोकतन्त्र को मुख्य रूप से अनुशासनहीनता से खतरा है। कुछ लोग लोकतन्त्र से निराश होकर हिंसा एवं अराजकता पर उतर आते है। वे'वाक आउट' एवं प्रदर्शनों में विश्वास करने लग जाते है। इन्दिरा गाँधी की हत्या, राजीव गाँधी की हत्या, कश्मीर की नही देश भर में आतंकवाद का विस्तार आदि अनुशासनहीनता के प्रमुख उदाहरण हैं। हाल ही में मुम्बई में हुई आतंकवादी घटना ने एक नई कड़ी इसमें जोड़ दी है।

सत्रहवाँ दुर्बल तत्व विधि के शासन की विफलता कहा जात सकता है। किसी भी समाज की बुनियादी आवश्यकता न्याय होती है। भारत में विधि का शासन सफल नहीं कहा जा सकता। 19 नवम्बर, 1999 को उच्चतम न्यायालय में 20,307 मामले लम्बित थे। इसी प्रकार दिसम्बर, 1998 में 32.03 लाख मामले विभिन्न उच्च न्यायालयों में एवं 21.00 करोड़ मामले अधीनस्थ न्यायालयो मे लम्बित थे। डॉ0 ज्ञान प्रकाश पिलानिया के अनुसार देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों मे सन् 2010 तक 34 लाख मुकदमे लम्बित पाए गए। उनका कहना है कि,''विलम्ब के कारण कानून की गरिमा में जनता की आस्था कम होती जा रही है और सरकार की प्रतिष्ठा भी गिर रही है। फौजदारी मुकदमों के निपटारे में देरी से दोषी को दण्ड का भय कम हो जाता है। और निर्दोष त्वरित राहत से वंचित रहता है वास्तव में विचाराधीन मुकदमों का शीघ्रतिशीघ्र निपटारा न्यायपालिका, अधिवक्ता, वादी–प्रतिवादी, सरकार एवं जनता सभी के लिए आवश्यक एवं श्रेयष्कर है।''[10]

अट्ठारहवाँ दुर्बल तत्व जातिवाद एवं सम्प्रदायवाद के खतरे कहा जा सकता है। भारत में जातिवाद एवं सम्प्रदायवाद से देश की एकता छिन्न–भिन्न हो सकती है एवं यहाँ के लोकतन्त्र को गम्भीर खतरा पैदा हो सकता है। इनकी भावना मानवता के भी विरूद्ध है। जातिवाद एंव साम्प्रदायिकतावाद से राजनीतिक समानता का मार्ग अवरूद्ध होता है। देश के राजनीतिक दल चुनावों के समय वोट प्राप्त करने के लिए जब जातिवाद का सहारा लेते हैं फिर तो इस खतरे का कोई ठिकाना ही नहीं है।

उन्नीसवाँ दुर्बल तत्व आर्थिक असमानता कहा जा सकता है। लोकतन्त्र में आर्थिक समानता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारत में अन्न पैदा करने वाला किसान ही भूखों मरता है। श्रमिको को एवं मजदूरों को अच्छा जीवन–स्तर उपलब्ध नहीं है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के इस कथन में सच्चाई है कि, ''हम सामाजिक और आर्थिक असमानताओं से ग्रस्त इस राष्ट्र को संसदीय लोकतन्त्र रूपी राजनीतिक समानता का अस्त्र तो दे रहें हैं, लेकिन समानता क लिए हमें अनगिनत अन्तर्विरोधों से लड़ना होगा और यह एक दुष्कर कार्य होगा।'' आजादी के इतने वर्षो बाद भी भारत में आर्थिक समानता दिवास्वप्न बनी हुई है।

भारत में संसदीय लोकतन्त्र को मजबूत बनाने के लिए सुझाव

भारत में संसदीय लोकतन्त्र को मजबूत बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

पहला सुझाव यह दिया जा सकता है कि दल–बदल पर रोक लगायी जाए। भारत में दल–बदल पर रोक लगाना अत्यावश्यक है। इससे सत्ता हथियाने की विकृत मानसिकता पर रोक लग सकेगी। दल–बदल के 52वें संविधान संशोधन अधिनिय में भी इस दृष्टि से संशोधन हैं।

दूसरा सुझाव यह दिया जा सकता है कि हिंसा पर रोक लगायी जानी चाहिए। लोकतन्त्र में हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। विरोधी दलों को हिंसा का रास्ता छोड़कर रचनात्मक विरोध की ओर उन्मुख होना चाहिए।

तीसरा सुझाव यह दिया जा सकता है कि प्रभावी विरोधी दल का विकास किया जाना चाहिए। भारत में प्रभावी विरोधी दल का विकास की त्वरित माँग है। राजनीतिक दलों मे ध्रुवीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करके सुदृढ़ प्रतिपक्ष का निर्माण किया जा सकता है।

चौथा सुझाव यह दिया जा सकता है कि संसदीय प्रक्रिया का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। भारत में संसद एवं विधानमण्डलों के सदस्यों को संसदीय प्रणाली एवं कार्यविधि से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। इससे संसदीय संगठन को बल मिलेगा।

पाँचवाँ सुझाव यह दिया जा सकता है कि उत्तरादायी प्रशासन का निर्माण किया जाना चाहिए। प्रशासन को अधिक उत्तरदायी एवं

कार्यकुशल बनाना होगा एवं उनमें यह भावना पैदा करनी होगी कि वे जनता के शासक नहीं अपितु सेवक हैं।

छठाँ सुझाव यह दिया जा सकता है कि राजनीतिक चेतना का जागरण किया जाना चाहिए। देश के मतदाताओं में राजनीतिक चेतना जगानी होगी, जिससे वे चुनावों के अवसर पर अपनी सही इच्छा को अभिव्यक्त कर सकें।

सातवाँ सुझाव यह दिया जा सकता है कि संसदीय समितियों की कार्यक्षमता में वृद्धि की जानी चाहिए। भारत में संसदीय परामर्शदात्री समितियों की कार्यक्षमता में भी वृद्धि करना आवश्यक है, इससे प्रशासन पर प्रभावी एवं सार्थक नियन्त्रण हो सकेगा।

आठवाँ सुझाव यह दिया जा सकता है कि आर्थिक समानता एवं सुधार लाया जाए। आर्थिक दृष्टि से देश को नए कीर्तिमान कायम करने होंगे। महँगाई रोकनी होगी। साक्षरता के प्रतिशत मे वृद्धि करनी होगी। जनसंख्या पर काबू पाना होगा। बेरोजगारों के लिए काम की व्यवस्था करनी होगी।

नौवाँ सुझाव यह दिया जा सकता है कि चुनाव–प्रक्रिया में सुधार लाया जाना चाहिए। देश की चुनाव प्रक्रिया मं अविलम्ब सुधार किया जाना चाहिए। खर्चीली एवं दूषित चुनाव प्रणाली के कारण हमारा लोकतन्त्र अमीरतन्त्र के रूप के परिवर्तित हो गया लगता है।

दसवाँ सुझाव यह दिया जा सकता है कि शिक्षित एवं ईमानदार प्रतिनिधि का चयन किया जाना चाहिए। संसदीय संस्थाओं के संचालन में भाग लेने वाले शिक्षित, योग्य, निष्ठावान एवं ईमानदार प्रतिनिधियों को चुनावों में सफल बनाया जाना चाहिए। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार ''योग्य, ईमानदार, चरित्रवान और निष्ठावान व्यक्ति त्रुटिपूर्ण संविधान को भी सर्वोत्तम बना सकते है।''[11]

भारत में संसदीय लोकतन्त्र का भविष्य

भारत में लोकतन्त्र का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि यहाँ की जनता एवं यहाँ के नेता कितने महत्वाकांक्षी हैं एवं उनकी महत्वाकांक्षा का स्तर कैसा है। प्रो0 पुष्पेश पन्त ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि, ''भारतीय जनतन्त्र की सबसे बड़ी बीमारी महत्वाकांक्षा का अभाव है। न तो महत्वाकांक्षी है और न ही नेता। नेताओं की महत्वाकांक्षा विधानसभा, संसद तक चुने जाने तक सीमित हैं या मन्त्री विशेष बनने तक। न उन्हे इतिहास मे अपना स्थान सुरक्षित करने की अभिलाषा है, ना अपना नाम किसी नीति निर्माण के साथ जोड़ने की ललक।''[12] भारत में लोकतन्त्र का भविष्य निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है

a. देश का प्राथमिक आर्थिक समस्याओं का हम कितनी जल्दी समाधान खोज पाते है।
b. स्वच्छ एंव निष्पक्ष चुनावों की व्यवस्था के लिए चुनावों के प्रयोग में आने वोल काले धन की बुराई को हम देश से कितना जल्दी दूर कर पाते हैं
c. देश से निरंकुश एवं सामन्तवादी प्रवृत्तियों को हम कितना जल्दी समाप्त करने में सफल हो पाते है।
d. शासक दल विपक्ष के विचारों का किस सीमा तक एवं कितना आदर एवं सम्मान करने का प्रयत्न करता है।

वास्तविकता यह है कि हमारे देश में संसदीय लोकतन्त्र जीवित है और फल–फूल रहा हैं। यह गर्व एवं सम्मान की बात है। लेकिन स्वतन्त्रता को हमेशा निश्चित नहीं मानना चाहिए। प्रो. लास्की ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि'' सतत् जागरूकता ही स्वतन्त्रता की कीमत है।'' इसलिए जब तक भारत देश के लोग जागरूक रहेंगे, तब तक देश मे लोकतन्त्र रूपी चिराग जलता रहेगा। इसकी रोशनी और प्रखर होगी। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारत मे लोकतन्त्र का भविष्य सुरक्षित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. देसाई, मोराजी–भारत में संसदीय लोकतंत्र, 'लोकतत्र–समीक्षा' जनवरी–मार्च, 1969 पृ0–2–3
2. डॉ0 काश्यप, सुभाष–भारतीय मतदाता और राजनीतिक संरचना, 6 सितम्बर 1970,पृ–6–7
3. डॉ0 अटल, योगेश–जनसत्ता, 18 अगस्त 2005
4. तिलक, रघुकुल–इण्डिया टुडे, 20 फरवरी 2002, ''है इधरा सरगमा तो उधर भी है''
5. डॉ0 सिंघवी, लक्ष्मीमल्ल–भारतीय संसद : नई दृष्टि, लोकतंत्र समीक्षा, जुलाई सितम्बर, 1971,पृ–151
6. डॉ0 सिघंवी, लक्ष्मीमल्ल–पृ0–151
7. प्रो0 सेठी, जे.डी.–संसद का घटना दर्जा' नई दुनिया, 22 सितम्बर, 1974 पृ0–41
8. मेनन, वी0के0 एन0–'इण्डिया सिन्स इण्डिपेडेन्स' 1980 पृ0–40–41
9. सिंह, तबलीन, खरी–खरी, 'अब चुनाव महज एक तमाशा' (इण्डिया टुण्डे 27 फरवरी, 2002) पृ0–27
10. डॉ. पिलानिया, ज्ञान प्रकाश, ' त्वरित न्याय में बाधक मुकदमों का अम्बार' दैनिक भास्कर, दिनांक 04 दिनांक 04 जनवरी 2002
11. कॉन्सीटीट्यूएट असेम्बली डिबेट्स खण्ड–11 पृ0–984–995
12. कोठारी, रजनी–भारत में राजनीति–पृ0–18